The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 9 | September 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

पश्चिमी गढ़वाल हिमालय की जाड़ जनजाति का सामाजिक जीवन : एक विश्लेषण

प्रमोद सिंह

(शोधार्थी, इतिहास विभाग, स्वामी राम तीर्थ परिसर, बादशाहीथौल, टिहरी गढ़वाल, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड), ORCID iD: 0009-0001-4725-111X

डॉ० प्रेम बहादुर

(असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, स्वामी राम तीर्थ परिसर, बादशाहीथौल, टिहरी गढ़वाल, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड), ईमेलःpramodkohli4728@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.17326771

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 26-09-2025

Published: 10-10-2025

Keywords:

जाड़ जनजाति, ऋतुकालीन प्रवास, भोटिया समुदाय, जीवन शैली, खान पान, वेशभूषा।

ABSTRACT

यह शोध–पत्र पश्चिमी गढ़वाल हिमालय की नेलांग घाटी में निवास करने वाली जाड़ जनजाति के सामाजिक जीवन का गहन विश्लेषण करता है। नेलांग घाटी, भारत–तिब्बत सीमा पर स्थित एक अत्यंत दुर्गम और सामरिक दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र है, जहां निवास करने वाली जाड़ जनजाति अपने विशिष्ट सामाजिक जीवन, पारंपरिक रीति–रिवाजों और सांस्कृतिक मूल्यों के लिए जानी जाती है। सन् 1962 के भारत–चीन युद्ध के पश्चात जाड़ समुदाय को उनके पारंपरिक गांव नेलांग और जादुंग से विस्थापित कर हर्षिल स्थित बगोरी (ग्रीष्मकालीन निवास) एवं डुंडा (शीतकालीन निवास) क्षेत्रों में पुनर्वासित किया गया। यह जनजाति आज भी ऋतुकालीन प्रवास की परंपरा को जीवित रखे हुए है, जिसमें वे मैती (ग्रीष्मकालीन निवास) और गुनसा (शीतकालीन निवास) नामक बसावटों के मध्य अपने पशुधन और संसाधनों के साथ स्थानांतरित होते हैं। प्रवासी जीवन के इस चक्र में उनके सामाजिक व्यवहार, लोक विश्वास, खान–पान, और जीवनशैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रस्तावना

उत्तराखंड, अपनी नैसर्गिक सुंदरता और भव्यता के लिए ही नहीं, बल्कि अपनी गोद में पलने वाली विविध मानव संस्कृतियों के लिए भी जाना जाता है। इन्हीं संस्कृतियों में से एक अनूठी और लचीली संस्कृति है पश्चिमी गढ़वाल के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में निवास करने वाली जाड़ जनजाति की। जनजाति को कई प्रकार से परिभाषित किया जा

सकता है । डॉ. मजूमदार के अनुसार 'जनजाति अथवा आदिम जाति परिवार समूहों के एक ही भू–भाग में निवास करते हैं। एक ही भाषा बोलते हैं तथा विवाह तथा व्यवसाय आदि के मामलों में विशिष्ट निषेधों को मानते हैं। पारस्परिक व्यवहार में भी ये विशिष्ट नियमों का पालन करते हैं। आधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति से प्रायः अछूत हैं।[i] सरकार द्वारा 24 जून 1967 को राज्य की भोटिया, बोक्सा, जौनसारी, थारू तथा राजी समुदायों को राज्य की अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित किया गया है।[ii] इसी भोटिया जनजाति की एक उप शाखा जाड़ जनजाति है जो उत्तरकाशी के सीमांत क्षेत्र नेलांग घाटी में निवास करती है। जहां उनकी परंपराएँ और जीवनशैली आज भी जीवंत हैं

भोटिया जनजाति – उत्तराखंड की प्राचीनतम जनजातियों में से एक, भोटिया जनजाति, अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत और ऐतिहासिक महत्व के लिए जानी जाती है। यह समुदाय महान हिमालय के ऊँचे क्षेत्रों में, भारत–तिब्बत सीमा पर, लगभग 6,500 फीट (2,000 मीटर) से 13,000 फीट (4,000 मीटर) की ऊँचाई पर निवास करती है। उत्तराखंड के उत्तरकाशी, चमोली तथा पिथौरागढ़ जनपदों के वे सीमांत क्षेत्र जो तिब्बत से सटे हुए हैं, 'भोटान्त' कहलाते हैं और यहाँ के निवासियों को 'भोटान्तिक' या ''भोटिया'' कहा जाता है।[iii] इनकी उत्पत्ति के विषय में कई मत प्रचलित हैं, पौराणिक साहित्य में वर्णित तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हिमालय के इस क्षेत्र में मध्य एशिया को छोडकर तिब्बत मार्ग से कुणिन्द, किरात, दग्ध, खस आदि जातियों पहुंची थी।[iv] इन्हीं जातियों ने इस क्षेत्र को उपयुक्त समझकर यहाँ स्थायी रूप से निवास करना प्रारंभ कर दिया। इसी प्रक्रिया में भोटिया जनजाति ने भी इस भूभाग को अपना स्थायी निवास बनाया। क्रुक के अनुसार, ''भोटिया'' शब्द की उत्पत्ति 'भोट' अथवा 'भूट' से हुई है, जो तिब्बत और नेपाल से सटे सीमावर्ती क्षेत्र को इंगित करता है। चूँकि यह क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से तिब्बत की राजसत्ता 'भोट्' के अधीन था, इसलिए इस क्षेत्र को 'भोट' कहा गया और यहाँ निवास करने वाली जाति को भोटान्तिक या भोटिया कहा गया।[v] एटकिसन, के अनुसार तिब्बत क्षेत्र के हुणिया जनजाति के समान भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड में निवासी करती है। उनके अनुसार इन दोनों जनजातियों का सम्बन्ध खस जाति से है। आगे उनका कहना है कि भारत में आर्यों का आगमन गढ़वाल एवं कुमाऊँ क्षेत्र से हुआ है। अतः ये लोग आर्यों के ही वंशज हैं।[vi] हिमालयन गजेटियर (1882:138) में एटकिंसन ने कहा है कि भोटिया शब्द की उत्पत्ति 'भोट' शब्द से हुई है जो कि 'बोड' शब्द का अपभ्रंश है। इसका अर्थ तिब्बत से लगाया जाता था और इसी भोट शब्द ने भोटिया नाम को जन्म दिया, जिसे कालान्तर में तिब्बत तथा भारत के बीच सीमान्त क्षेत्र में रहने वाले मानव समूहों के लिए प्रयुक्त किया गया। राहुल सांकृत्यायन ने इनकी शारीरिक विवेचना के आधार पर इन्हे प्राचीन किरात, जिन्हें आज मौनख्मेर के नाम से जाना है, के अवशेष माना है।[vii] शारीरिक बनावट के आधार पर, भोटिया जनजाति को तिब्बती एवं मंगोलियाई प्रजाति का सम्मिश्रण माना जाता है। इनकी प्रमुख शारीरिक विशेषताओं में छोटा कद, बड़ा सिर, गोल चेहरा, छोटी आँखें, चपटी नाक, गोरा रंग तथा शरीर पर बालों की कमी शामिल है। उत्तराखंड में भोटिया जनजाति कई समूहों में विभाजित है, जिनमें प्रमुख हैं: जोहारी, जेठरा, दारमी, चौंदासी, ब्यासी,

मारछा, तोल्छा और जाड। इनकी बस्तियाँ पिथौरागढ़ जिले में जोहार, दारमा, ब्यांस और चौदास घाटियाँ, चमोली जिले में नीति एवं माणा घाटियाँ और उत्तरकाशी जिले के नेलांग और जादुंग घाटियों में है।[viii]

जाड़ जनजाति उत्तराखंड के उच्च हिमालयी क्षेत्र में निवास करने वाली एक अर्ध–खानाबदोश समुदाय है, जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और अनूठी जीवनशैली के लिए जानी जाती है। इस जनजाति का मूल निवास भागीरथी की ऊपरी सहायक नदी, जाड़गंगा (जाहनवी) के नेलांग घाटी में हुआ करता था।। इनके मूल ग्राम जादुंग के निकट जनक ताल स्थित है, जो एक अति प्राचीन और पवित्र पूजा स्थल है। जाड़ जनजाति के लोग स्वयं को राजा जनक के वंशज मानते हैं । इन लोगो द्वारा अपनी पहचान के लिए भोटिया नाम का इस्तेमाल नहीं किया जाता है, बल्कि तिब्बती–बर्मी परिवार की अपनी भाषा में वे खुद को रोग–पा कहते हैं।[ix] सन् 1962 के चीनी आक्रमण के पश्चात, जाड़ समुदाय को उनके मूल गांवों नेलांग और जादुंग से विस्थापित कर हर्षिल के समीप बगोरी (ग्रीष्मकालीन निवास) और उत्तरकाशी के निकट डुंडा (शीतकालीन निवास) में बसाया गया। इस समुदाय को 'जाड़' नाम इसलिए दिया गया, क्योंकि ये लोग गंगोत्री के समीप जाड़गंगा के तट पर बसे हैं। हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों में, जहां ये निवास करते हैं, वहां उपजाऊ भूमि की कमी के बावजूद, जाड़ जनजाति ने अपनी अनूठी जीवनशैली और सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित रखा है।

शोध पद्धति

यह शोध–पत्र पश्चिमी गढ़वाल हिमालय की जाड़ जनजाति के सामाजिक जीवन का गुणात्मक और वर्णनात्मक विश्लेषण करता है, जिसमें ऐतिहासिक–नृवंशविज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। डेटा संग्रह के लिए द्वितीयक स्रोतों में एटकिंसन का हिमालयन गजेटियर (1882) पौराणिक साहित्य, जनगणना रिपोर्ट, सरकारी अभिलेख और पूर्व प्रकाशित शोध शामिल हैं, जो जनजाति के इतिहास और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायक रहे। प्राथमिक डेटा संग्रह के लिए नेलांग घाटी, हर्षिल, बगोरी और डुंडा में क्षेत्रीय अध्ययन, सहभागिता अवलोकन और अर्द्ध–संरचित साक्षात्कार आयोजित किए गए, जिसमें समुदाय के बुजुर्गों, महिलाओं और युवाओं से दैनिक जीवन, परंपराओं, खान–पान, वेशभूषा, विवाह प्रथाओं और सामाजिक संरचना का गहन अध्ययन किया गया, जिसमें ऐतिहासिक संदर्भों और समकालीन परिवर्तनों (जैसे आधुनिक शिक्षा और शहरीकरण के प्रभाव) का विश्लेषण शामिल है। यह अध्ययन सांस्कृतिक संरक्षण और आधुनिकता के बीच संतुलन को रेखांकित करता है।

सामाजिक जीवन– जाड़ जनजाति का सामाजिक जीवन धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध है, जहां यह समुदाय बौद्ध और हिंदू धर्म का पालन करता है। यह समाज तीन प्रमुख समूहों— छियाङ, फियाङ या फिया और जिलो में विभाजित है।[x]

छियाङ् – इस वर्ग का सामाजिक व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान है। ये ऊन का व्यवसाय करते हैं। जाति व्यवस्था की दृष्टि से राणा, रावत, नेगी, भंडारी, बिष्ट, रमोला आदि उपजातियों इसी वर्ग में गिनी जाती हैं। जो सामान्यतः

उत्तराखंड की पहाड़ी संस्कृति के गढ़वाल क्षेत्र में राजपूत जातियों के अंतर्गत आते हैं । समाज में इनका उच्च स्थान होने का कारण इनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति है। जैसा कि सर्वविदित तथ्य है कि उच्च आर्थिक स्थिति सामान्यतः उच्च सामाजिक व्यवस्था का द्योतक माना जाता है।

फियाङ् या फिया – इस वर्ग का वर्ण व्यवस्था में द्वितीय स्थान है। वर्तमान में यह वर्ग मुख्य रूप से ऊन तथा पशुपालन के कार्यों में लगे हुए हैं।

जिलो– जिलों शब्द जुलाव/जुलाहा या बुनकर से बना है।

जाति–व्यवस्था के तृतीय विभाग में यह महत्वपूर्ण वर्ग है, जिसमें कोली आदि उपजातियाँ शामिल हैं। उपर्युक्त दोनों वर्णों का इनसे कोई मेल–जोल नहीं होता। वर्ण–व्यवस्था के विकास की आरम्भिक अवस्था में ये हिमांचल के बुशाहर और कुल्लू आदि प्रान्तों में ताना बुनते थे तथा बुनकर का कार्य करते थे। प्रारंभ में कोली बुनकर साङ्ला, कुन्नू–चारङ्, मोरङ्, ठांगी आदि क्षेत्रों में रहते थे जो शीत में बुनाई–कार्य करने टिहरी रियासत के टकनौर, बाड़ाहाट, रामा–सिराँई, बड़कोट आदि कस्बों में जाते थे। धीरे–धीरे इन्होंने नए व्यवसायों को अपना लिया। ये सभी बौद्ध धर्म तथा हिन्दू धर्म में समान आस्था रखते हैं। इन्हें 'कोली' कहा जाता है। जाड़ों ने धराली–मुखबा के बाजगी तथा झुमरियों को अपने आर्थिक एवं धार्मिक आवश्यकताओं के कारण अपने संप्रदाय से जोड़ा। जो उनके पशुपालन और कृषि कार्यों में सहयोग देते थे और इनसे सम्बद्ध आवश्यक लोहे तथा रिङाल के उपकरण बनाते थे। धार्मिक और अन्य सामाजिक अवसरों पर ढोल बजाते थे फलतः पारितोषिक में इन्हें 'डडवार' दिया जाता था।

अन्य – उत्तरकाशी जनपद की जाड़ सामाजिक व्यवस्था में कई अन्य समुदाय भी शामिल हैं। इनमें चमोली जिले के मारछा और तोल्छा के साथ–साथ पिथौरागढ़–मुनस्यारी क्षेत्र के जुहारी, चौदास, दारमा, व्यॉस के रङ् तथा खाम्पा आदि समुदाय प्रमुख हैं। वर्तमान वीरपुर क्षेत्र में, जाड़ (जिन्हें च्छोङ्ग्सा भी कहा जाता है) जनजाति के अलावा उपरोक्त समुदाय के लोग भी रहते हैं। जाड़ लोगों के खाम्पा समुदाय को छोड़कर बाकी सभी समुदायों के साथ वैवाहिक और सामाजिक संबंध हैं। हालांकि, वीरपुर में खाम्पा के 50–60 परिवारों के अलावा, मारछा, तोल्छा, जुहारी और रङ् समुदाय के गिने–चुने परिवार ही निवास करते हैं। खाम्पा समुदाय की बात करें तो वे उत्तरकाशी जनपद के बड़कोट, पुरोला, मोरी, नैटवाड़, त्यूणी, उत्तरकाशी और भटवाड़ी जैसे विकास खंडों में बसे हुए हैं। वे तिब्बती (खाम) भाषा बोलते हैं और जाड़ समुदाय के साथ उनके सामाजिक संबंध केवल औपचारिक स्तर तक ही सीमित हैं।

परिवार – जाड परिवार स्थानीय निवासियों की तरह पितृसत्तात्मक होते हैं। माता–पिता अपने बच्चों के प्रति गहरा स्नेह रखते हैं, और परिवारों में नवजात संतति का आगमन हर्षोल्लास का कारण बनता है। परंपरागत रूप से, जाड़ परिवारों में पिता की संपत्ति पर पुत्रों और पुत्रियों का समान अधिकार होता है, जिसमें पुत्र और पुत्री के बीच कोई भेदभाव नहीं देखा जाता।[xi] जबकि सामान्यतः भारतीय संस्कृति में पुत्र रत्न प्राप्त करने की कामना की जाती है और पूजा व जप तप द्वारा देवताओं का आह्वान कर पुत्र रत्न प्राप्त करने का आशीर्वाद लिया जाता रहा है। किंतु

आधुनिक जीवन–शैली ने उनकी समदृष्टि को कुछ हद तक अवश्य प्रभावित किया है। आज माता–पिता के मस्तिष्क में यह भाव अवश्य जागृत होने लगा है कि पुत्र बुढ़ापे में हमारी सेवा करेगा और वंश को आगे बढ़ाएगा। कार्य–व्यवसाय को आगे बढ़ाने का कार्य भी पुत्र ही करता है क्योंकि पुत्रियाँ उतना कठोर श्रम नहीं कर सकती और न ही वे भेड़–बकरियों के साथ ऊँचे पर्वतों, बुग्यालों और जंगलों में आ–जा सकती है।

पहले, जाड़ जनजाति में बड़े और संयुक्त परिवारों का चलन था। इन परिवारों में दादा–दादी, चाचा–चाची, और भतीजे–भतीजी जैसे सभी सदस्य एक साथ रहते थे। घर की सभी महिलाएँ मिल–जुलकर काम करती थीं, जिससे पारिवारिक संगठन बहुत मजबूत और एकजुट रहता था। किंतु वर्तमान में, बहुत से जाड़ पुरुष और महिलाएँ सरकारी सेवाओं में कार्यरत हैं। इस व्यावसायिक बदलाव के कारण, संयुक्त परिवारों की जगह अब एकल परिवारों की संख्या लगातार बढ़ रही है।[xii] इस प्रकार वर्तमान समय की मांग ने संयुक्त परिवार की अवधारणा को तहस–नहस करना प्रारंभ कर दिया है।

जाड़ महिलाओं की स्थिति – जाड़ समाज में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं,[xiii] और वे सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं आर्थिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। परिवार में कार्य–विभाजन के अनुसार, पुरुष बाहरी कार्यों में संलग्न रहते हैं, जबकि स्त्रियाँ घरेलू और आसपास के कार्यों को संभालती हैं। वे घर में रहकर कताई–बुनाई और वस्त्र–उत्पादन में सहयोग करती हैं। वीरपुर और डुंडा में जाड़ महिलाएँ ऊन कातने, जंगल से लकड़ी लाने, ऊन की धुलाई करने, और पशुओं के लिए चारा जुटाने जैसे कार्यों में सक्रिय दिखाई देती हैं।[xiv] हर्षिल और बगोरी में वे छीमी, सेब, और आलू के खेतों व बागों में कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त, जाड़ स्त्रियाँ 'थुलमा', 'दूमकर', 'पंखी', 'चुटका', 'कंबल', 'फांचा', और 'आंगड़ा' जैसे ऊनी वस्त्रों को अत्यन्त कलात्मक ढंग से बनाती हैं।[xv] ये कार्य न केवल उनकी पारिवारिक अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक विरासत को भी समृद्ध करते हैं।

खानपान – जाड़–परिवारों में शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन बनता है। झुंगोरे का भात (छाकू), फाफरे की रोटी, शहद, जौं–मंडुवा–गेहूं का सत्तू (सिल्दू). दाल–सब्जी (छामा) व मांस इनके मुख्य भोजन हैं। यह वर्ग बकरी, भेड़, मुर्गी, बटेर, तीतर आदि का मांस बड़े चाव से खाता है। भेड़–बकरी के मांस को सुखाकर रखा जाता है जिसका प्रयोग प्रायः शीत ऋतु में किया जाता है। जाड़ समुदाय में भी मछली का प्रचलन यत्र–तत्र ही दिखाई देता है, परंतु पहले इसे खाने के लिए नहीं मारा जाता था। निलाङ् तथा जादोङ् के घरों में मछली तथा मुर्गी का मांस पकाना वर्जित था। इनका मांस अच्छा नहीं माना जाता क्योंकि ये विष्टा पदार्थों को खाते हैं। यह परंपरा इनकी जनजातीय संस्कृति का द्योतक मानी जा सकती है जिसके माध्यम से यह इन्हें संरक्षित करने का कार्य भी करते हैं जैसे कि ज्ञातव्य है कि मछलियों द्वारा जल की गंदगी भी साफ करने का कार्य किया जाता है। मांस के लिए कभी–कभी पशुचारक चरान के समय फांस लगाते थे. जिनमें ध्वेड़, हिरन, काखड़, थार आदि जंगली जीव–जन्तु फंसते थे।[xvi] ये परिवार तेज नमक, तीखा, मसालेदार भोजन खाना पसंद नहीं करते। तली हुई भोजन सामग्री इन्हें अधिक प्रिय है। लहसुन का प्रयोग इस समाज में अधिक दिखाई देता है। एक कहावत भी प्रचलित है कि रोङ्मा शे

शुन्दली अर च्छोड्मा शे पिल्ली[xvii] अर्थात् स्थानीय गढ़वाली लोग शुन्दली खाते हैं परंतु च्छोड्सा पिल्ली खाते हैं भेड़–बकरी चराने वालों के पास हमेशा फाफरे की रोटी, सत्तू तथा सूखा हुआ मांस मिलता था, क्योंकि पहले आधुनिक विविध खाद्य पदार्थों का अभाव था। चरवाहे खाने के साथ हमेशा छङ् पीते थे, जो निलाङ् तथा जादोङ् के हर घर में मिलता था। यह छड़ जौ या गेहूँ के द्वारा बनाई जाती थी। वर्तमान में, जौ की खेती बहुत कम या ना के बराबर होने के कारण जौ का स्थान चावल ने ले लिया है।[xviii]

जाड़ जनजाति के पेयों में 'ज्या' (नमकीन चाय) प्रमुख हैं। खेर (थुनेर वृक्ष) की छाल के चूरे को नमक और याक के मक्खन या घी के साथ उबालकर चाय बनाई जाती थी। उसमें सूखे मट्टे का चूरा 'छ्यूरा' मिलाकर बांस के 'दोङ्मू' में मथा जाता था।[xix] जितना अधिक इसको मथा जायेगा उतना ही अधिक स्वाद चाय में आता है। प्रत्येक व्यक्ति दिन में लगभग 20 कांसी (कटोरे) चाय पीता था। उपलों से सत्तू और चाय जल्दी उबल जाती थी। यह नमकीन चाय स्वादिष्ट तो होती ही है साथ ही साथ कड़ाके की सर्दी के अनुकूल भी हैं। गरमाई लाने के साथ–साथ गले की बीमारियों जैसे टोन्सिल आदि के लिये भी लाभदायक है। शराब को 'च्यकती' या 'छंग' कहा जाता है। इसे समस्त संस्कारों, उत्सवों तथा धार्मिक कार्यों में एक पवित्र पेय के रूप में उपयोग में लाया जाता है। जाड़ महिलाओं द्वारा भी इसका सेवन किया जाता है।[xx] हुक्का (साज टोप) में तम्बाकू पीने की प्रथा यहाँ पहले से थी। तम्बाकू की पत्तियों के साथ चूना मिलाकर सुर्ती (काची) खाने की प्रथा भी उतनी ही पुरानी है। स्वयं तम्बाकू के पौधे उगा कर जंगली शहद के साथ तम्बाकू तैयार करते थे। तिब्बत में यह दोनों प्रचलन कहीं नहीं मिलते हैं। जौ एवं गेहूँ अथवा मंडुवा का सत्तू चाय के साथ तथा फाफर के आटे का गुंदका अचार या चटनी के साथ खाया जाता है। आटे में नमक मिलाकर एवं घोलकर वे सिल्दू पीते हैं। फाफर के पत्तों को उबालकर मॅडुवा के बाड़ी (बिना गुड़ का हलुआ) के साथ खाते हैं। पूली (डोसे की तरह छोटी थाली के आकार की रोटी), पतौड़ा (पैतुड) भी भोटिया समुदाय का लोकप्रिय भोजन है।

विवाह – उत्तराखंड के समाज में परंपरागत रूप से विवाह की कई विधियाँ प्रचलित रही हैं, जैसे बाल, अनमेल, बहुपत्निता, ढांटी, असवर्ण, टेकवा, पैशाच, राक्षस, गन्धर्व, असुर, प्रजापत्य, आर्ष, दैव और ब्राह्म विवाह। जाड़ जनजाति में भी विवाह की अपनी विशिष्ट प्रथाएँ रही हैं, जो उनके जीवन और समय की परिस्थितियों को दर्शाती हैं। तिब्बत–व्यापार के समय प्रायः परिवार के बड़े सदस्यों का समय पशुचारण एवं व्यापार में अधिक बीतता था। समय की कमी के कारण प्रायः लड़के के परिवार वाले लड़की के परिवार वालों से बातचीत करके मनपसंद लड़की घर ले आते थे। पूर्व में वर, वधू के घर नहीं जाता था।[xxi] केवल लड़की के घर मंगनी की प्रक्रिया होती थी। देखने या एक दूसरे को पसंद करने का चलन नहीं था। 'टुशा–ताङ् दुना' (हरण–प्रथा) या आपसी सहमति के आधार पर विवाह भी जाड़ समाज में देखे जाते हैं। जिसमे लड़की को पसन्द कर लेने के पश्चात् लड़का उसे रात्रि में भगाकर अपने घर ले जाता है। दूसरे दिन लड़की के घरवाले अपने कुछ लोगों के साथ लड़के के घर जाते हैं जहां लड़के को डंडों से पीटते हैं। इसके पश्चात् लड़का और लड़की को घर लाकर दूल्हा के दाहिने माथे और दुल्हन के बायें माथे पर घी

का टीका लगाकर उनको विवाह बन्धन में बांध दिया जाता है। इसके बाद इस अनुष्ठान में मौजूद सभी लोगों को छंग (स्थानीय मदिरा) पिलाकर विवाह की खुशी प्रकट की जाती है।

विवाह तय होने पर शगुन के तौर पर कन्या को व्यानी (कंगन), खोखली, चांदी का सुत्ता आदि भेंट किया जाता था। पहले 'फुलि' और 'तिमणी' दोनों सुहाग के प्रतीक थे, जिन्हें वर विवाह के समय कन्या को पहनाता था। विवाह के अवसरों पर मोतियों की माला पहनने की रीति 'मौतिक' प्राचीन समय से चली आ रही है। वर्तमान में विवाहित महिलाएँ सुहाग के चिह्न के रूप में मुख्यतः 'फुलि' धारण करती हैं, हालाँकि कुछ स्थानों पर 'फुलि' और 'तिमणी' दोनों का उपयोग भी देखा जाता है।

जाड़ समाज में विवाह सामान्यतः समान वर्ग या जाति के भीतर ही होते हैं। मामा की बेटी या बुआ के बेटे के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए जा सकते हैं, लेकिन मामा के बेटे या बुआ की बेटी के साथ विवाह निषिद्ध है। वर्तमान में जाड़ों के वैवाहिक संबंध बंगाण, डोडरा–क्वार और उत्तराखंड के अन्य जनजातीय समुदायों के साथ स्थापित हो रहे हैं। 1950 से पहले तिब्बतियों के साथ जाड़ों के वैवाहिक संबंध नहीं थे, लेकिन अब यह निषेध टूट रहा है। विवाह के अवसर पर दहेज देने की प्रथा प्रचलित है, जो नकद या सामग्री के रूप में हो सकती है। विवाह में सात टीके लगाने की परंपरा है, जो सात जन्मों और सात फेरों के समान महत्व रखते है।[xxii] जाड़ समाज में कम उम्र में विवाह नहीं किए जाते, क्योंकि प्रव्राजी (घुमक्कड़) जीवन में कम उम्र की वधू उपयुक्त नहीं मानी जाती। तिब्बत के साथ व्यापारिक संबंधों के दौर में बगोरी, जादोङ् और हर्षिल में वैवाहिक अवसरों पर दुल्हन के पिता की ओर से दहेज में दन, दोड़ी, कंबल आदि दिए जाते थे। लेकिन अब दहेज में वही दिया जाता है, जो पूरे उत्तराखंड में प्रचलित है—नकद और सामग्री दोनों। धनाढ्य जाड़ परिवारों में दहेज प्रथा बढ़ रही है, जो पहले राजा–संमातों तक सीमित थी। उदाहरणस्वरूप, टिहरी नरेश की पुत्री के बुशाहर राजकुमार से विवाह में निलाङ से तीन किलोमीटर दूर चोरगाड़ का क्षेत्र दहेज में दिया गया था। जाड़ समाज में 'नाड़ (बच्चा न होना) होने की स्थिति में पुरुष द्वारा दूसरा विवाह नहीं किया जाता। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर दूसरा विवाह प्रायः नहीं होता।[xxiii] पति एवं पत्नी में अनबन अथवा अलग होने की परिस्थिति में बड़े–बुजुर्गों की उपस्थिति तथा दोनों की सहमति से तलाक हो जाता था जिसे ''था–चोजा'' या ''था छै–सोङ्'' कहते हैं। प्रायः विधवा स्त्री का विवाह उसके देवर, जेठ अथवा परिवार के अन्य सदस्य से हो जाता था। वर्तमान में यह कुप्रथा समाप्त हो गई है।

वेशभूषा – जाड़ जनजाति की पारंपरिक वेशभूषा उनके कठोर हिमालयी वातावरण और आत्मनिर्भर जीवनशैली को दर्शाती है। वे अंदर सूती वस्त्र और बाहर भेड़–बकरियों की ऊन से बने मोटे कपड़े पहनते थे, जिन्हें वे स्वयं घरों में तैयार करते थे। पूस–माघ तथा भादों में पशुओं से ऊन निकाली जाती थी। भादों के महीने में ऊन को काता जाता था। यह ऊन महीन, नरम तथा लम्बी होती है। ऊन से कोट, स्वेटर, पंखी, दोड़ी, टोपी, दुम्कर, दस्ताना, जुराब, मफलर, गडरी सलवार, आंगड़ी, पागड़ा, भिण्डि, ऊनी पायजामा आदि बनाए जाते थे। जाड़ जनजाति के पुरुष घुटनों से थोड़ा ऊंचा गर्म चोगा पहनते हैं जिसे चपकन' कहा जाता है। नीचे ऊनी धारीदार एवं चूड़ीदार पायजामा पहनते

हैं। सिर पर हिमाचली टोपी तथा पैरों में खाल से निर्मित जूता पहनते हैं। जिसे 'पैन्तुराण' (रवाँई क्षेत्र में) कहा जाता है। जबकि जाड़ स्त्रियां पैरों तक लम्बा चोगा पहनती हैं। जिसे कॉलक' कहते हैं। इस 'कॉलक' के चारों ओर किनारों में प्राकृतिक रंगों द्वारा चित्रकारी की जाती है। कमर में एक कपडा लपेटती हैं जिसे 'केरक' या 'कैरा' कहा जाता है। विशेष अवसरों पर स्त्रियाँ झिलमिलाती काथरी तथा गोटेदार कॉलक जैसे कीमती वस्त्रों की शोभा को बनाए रखने के लिए पैरों में रंग–बिरंगे ऊन से बुनी हुई 'खरगोली पहनती थीं। बच्चों तथा शिशुओं को झगुली या झगुला पहनाया जाता था। जाड़ महिलाओं की पोशाक हिमाचल प्रदेश के सीमान्त निवासियों की पोशाकों से घनिष्ठ समानता रखती हैं और यह महिलाएँ स्वयं को कटे हुए सलवार एवं कुर्ते से सुसज्जित करती हैं।[xxiv]

आभूषण – जाड़ स्त्रियों के आभूषणों में नाक की बुलाक, टिहरी की नथ, गले में पहने जाने वाला सुत, रूपए, अठन्नी, चवन्नी आदि चांदी की गोल मुद्राओं के हार और हाथों में सोने के कड़े, मुरकुली, खोगली, डाठंग, ला–चुरु, धागुली, पैजपी, कान में अलंद और मुरकी आदि प्रमुख है। जाड़ स्त्रियाँ चुरु की माला भी पहनती हैं जिसमें कीमती पत्थर जड़े हुए होते हैं।[xxv] पुरुष कानों में सोने के एक–एक तोले के मुनड़े या बाली पहनते थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जाड़ जनजाति का सामाजिक जीवन प्रारंभ में परंपरागत रूप से प्रकृति प्रदत्त उपहारों, जैसे जंगली पेड़–पौधों, वनस्पतियों, जीव–जंतुओं और पशु–पक्षियों पर निर्भर हुआ करता था। किंतु कालांतर मे इन्होंने अपने पैतृक व्यवसायों के विस्तार के लिए बाहरी समाजों से संपर्क किया, जिसके फलस्वरूप उनकी संस्कृति पर तिब्बती और हिमाचली समाज का गहरा प्रभाव पड़ा। इस संपर्क ने उनकी पारंपरिक व्यवस्था में परिष्कार की प्रक्रिया को भी गति दी। वर्तमान में, आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से जाड़ जनजाति के लोग शहरी क्षेत्रों की ओर अग्रसर हुए हैं, जहां उनके पारंपरिक उत्पादों का व्यापार द्वारा अच्छा आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ, साथ ही परंपरागत व्यवसाय के अतिरिक्त नौकरीपेशे के क्षेत्र में भी प्रवेश के अवसर मिले। यद्यपि नौकरीपेशे के क्षेत्र में उनकी भागीदारी अभी सीमित है, फिर भी इन परिवर्तनों ने उनकी परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया है और उसमें आधुनिकता का समावेश धीरे–धीरे प्रारंभ हो चुका है। यह बदलाव उनकी संस्कृति और जीवनशैली में नए आयामों को रेखांकित करता है।

संदर्भ सूची :

[i] मजूमदार, डी. एन. (1952). रेस एंड कल्चर ऑफ इंडिया, एशियन पब्लिकेशन हाउस, बॉम्बे

[ii] दास, चित्तरंजन. (2006). सोशल इकोलॉजी एंड डेमोग्राफिक स्ट्रक्चर ऑफ भोटियाः नारेटिव्स एंड डिस्कोर्से, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, पृ.17

[iii] डबराल, शिवप्रसाद. (2056 विक्रमी). टिहरी गढ़वाल राज्य का इतिहास– प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण). वीरगाथा प्रकाशन, दोगडा, गढ़वाल, पृ. 20.

[iv] सिंह, वी., एवं गोस्वामी, डी. सी. (2020, अप्रैल), चेंजिंग पैटर्न ऑफ ट्रांसहुमांस पेस्टोरलिज्म इन अपर भागीरथी बेसिनः ए केस स्टडी ऑफ जाड़ भोटिया कम्युनिटी. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव रिसर्च एंड एडवांस्ड स्टडीज (IJIRAS). 7(4), पृ.174–176.

[v] वाल्टन, एच. जी. (1911), डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ यूनाइटेड प्रोविंसेसा (खंड 35)

[vi] एटकिन्सन ई.टी. (1974) हिमालयन गजेटीयर, वा०–3, कास्मों पब्लिकेशन, नई दिल्ली

[vii] सांकृत्यायन, राहुल, कुमाऊं, इलाहाबाद, 1958, पृ. 420

[viii] सामल, प्रसन्ना के., टॉपल, यश पाल एस., एंड पंत, पुष्पा. (2000). वन रावत्स ए ट्राइब इन पेरिल, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल, पृ. 15

[ix] चन्ना, सुभद्रा मित्र. (2013). द इनर एंड आउटर सेल्वेसः कॉस्मोलॉजी, जेंडर, एंड इकोलॉजी एट द हिमालयन बॉर्डर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 46

[x] ममगाँई, सुरेश. (2016). मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 51

[xi] शास्त्री, शिवराज. (1962). ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक संबंध, लीला कमल प्रकाशन, मेरठ, पृ. 406

[xii] ममगाँई, सुरेश, पूर्वोद्धृत, पृ. 55

[xiii] बिस्ट, बी.एस. (2004). ट्राइब्स ऑफ उत्तरांचलः ए स्टडी ऑफ एजुकेशन, हेल्थ, हाइजीन एंड न्यूट्रिशन, कल्पज पब्लिकेश, दिल्ली, पृ. 100

[xiv] Rawat, H., Rani, A., and Goel, A. 2019. Sustainable traditional dyeing of wool by Bhotia tribe in Himalayan region: A case study. Journal of Applied and Natural Science, 11(2): 379- 383 https://doi.org/10.31018/jans.v11i2.2068

[xv] Singh, Varsha. 2022, In Uttarakhand, the centuries-old nomadic lifestyle of shepherds is now in danger https://amp.scroll.in/article/1015705/in-uttarakhand-the-centuries-old-nomadic-lifestyle-of-shepherds-is-in-danger

[xvi] ममगाँई, सुरेश, पूर्वोद्धृत, पृ.113

[xvii] डबराल, शिवप्रसाद. उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, वीरगाथा प्रकाशन, गढ़वाल, दोगडा, 2052 विक्रमी, पृ. 80

[xviii] डबराल, शिवप्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृ. 81

[xix] एटकिंसन, एडविन टी. हिमालयन गजेटियर, ग्रंथ–तीन, भाग–दो, (अनुवादक–प्रकाश थपलियाल) उत्तराखण्ड प्रकाशन, चमोली, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. 620

[xx] चन्ना, सुभद्रा मित्र, पूर्वोद्धृत, पृ. 180

[xxi] ममगाँई, सुरेश, पूर्वोद्धृत, पृ. 56

[xxii] डबराल, शिवप्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृ. 137

[xxiii] ममगाँई, सुरेश, पूर्वोद्धृत, पृ. 58

[xxiv] बनर्जी, एम. प्रिमिटिव मैन इन इण्डिया, 1964, पृ. 108

[xxv] कंडारी, स्वेता.(2021, जुलाई). द जाड़ भोटिया कम्युनिटी ऑफ बगोरी विलेज

https://map.sahapedia.org/article/Jadh-Bhotiya-Community-in-Bagori-Village/10666